RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17, अंक-3, जून जुलाई अगस्त 2024

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17 अंक - 3 जून-जुलाई-अगस्त-2024

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** – पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** – प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** – प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** – पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** – पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** – सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** – पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** – आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** – पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

वैदिक दर्शन में ब्रह्म का स्वरूप

_डॉ. किरन बड़ेरिया_
_सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)_
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

वेदों में ब्रह्म को उस परम सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार—इन तीनों का मूल कारण है। वह शक्ति है जो सबको धारण करती है और स्वयं किसी पर निर्भर नहीं रहती। यजुर्वेद और अथर्ववेद में ब्रह्म को जगत की आदि सत्ता कहा गया है, अर्थात् सृष्टि की शुरुआत में वही एकमात्र सत्य विद्यमान था और उसी से सत् तथा असत्, दृश्यमान और अदृश्य—दोनों जगतों की उत्पत्ति हुई। इसीलिए ब्रह्म को 'सर्वकारण भाव' कहा गया है।

वेद बताते हैं कि यह ब्रह्म केवल शक्ति मात्र नहीं, बल्कि 'ज्योतिर्मय सत्ता' है—ऐसी दिव्य प्रकाश-सत्ता, जिसके कारण सूर्य, अग्नि और अन्य सभी प्रकाश स्रोत प्रकाशित होते हैं। वह स्वयं प्रकाश का मूल स्त्रोत है इसलिए उसे 'महाज्योति' कहा गया है। अथर्ववेद में यह भी कहा गया है कि ब्रह्म के प्रकाश से ही सम्पूर्ण विश्व आलोकित होता है; वह अनेक रूपों में प्रकट होकर भी स्वयं अद्वितीय रहता है।

ब्रह्म का एक महत्वपूर्ण स्वरूप उसका 'सर्वव्यापक होना' है। वह स्थावर और जंगम, चर और अचर, सबमें समान रूप से विद्यमान है। जीव के हृदय-मन्दिर में भी वही चेतन तत्त्व के रूप में विराजमान है। उसकी सर्वत्र उपस्थिति यह दर्शाती है कि ब्रह्म बाहर भी है और भीतर भी; संसार के प्रत्येक कण में उसी का अंश व्याप्त है।

अथर्ववेद के 13वें काण्ड में ब्रह्म के 'एकत्व' का अत्यन्त स्पष्ट और गम्भीर प्रतिपादन हुआ है। वहाँ कहा गया है कि ब्रह्म न दो है, न तीन, न अनेक; वह केवल एक ही समष्टि सत्ता है। देवताओं की विविध धाराएँ, प्रकृति के अनेक रूप और सम्पूर्ण विश्व के अनंत आयाम—सब मिलकर उसी एक ब्रह्म में अन्तर्निहित हैं। इस एकत्व की प्रक्रिया को वेद 'एकवृत्' कहते हैं, जिसका अर्थ है कि बहु रूप दिखाई देने वाली सारी शक्तियाँ अन्ततः एक ही मूल सत्ता में संगठित हो जाती हैं।

वेदों में ब्रह्म को उस एकमात्र परम सत्ता के रूप में दर्शाया गया है, जो अनेक रूपों में प्रकट होकर भी अपने स्वभाव में अद्वितीय और अविभाज्य रहती है। ऋग्वेद कहता है कि वही एक ब्रह्म पिता भी है, विधाता भी, विश्वकर्मा भी और देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित सभी शक्तियों का आधार भी। अथर्ववेद स्पष्ट करता है कि अर्यमा, वरुण, रुद्र, महादेव, अग्नि, सूर्य, मृत्यु, अमृत और महाशक्ति ये सब अलग-अलग देवत्व नहीं, बल्कि उसी एक ब्रह्म की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं। चन्द्रमा और नक्षत्र भी उसी परम सत्ता की व्यवस्था के अनुसार कार्य करते हैं। इस प्रकार ब्रह्म को सर्वरूप, सर्वनाम और

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

सर्वव्यापक कहा गया है, क्योंकि वह एक होते हुए भी अनेक नामों और रूपों से दुनिया को संचालित करता है।

अथर्ववेद ब्रह्म की सनातनता और नूतनता को एक अत्यंत दार्शनिक दृष्टिकोण से समझाता है। वह कहता है कि ब्रह्म एक साथ प्राचीन भी है और नवीन भी—जैसे दिन और रात। जो समय बीत चुका, वह प्राचीन है; जो वर्तमान में है, वह नवीन। पर दोनों का मूल तत्व एक ही है। विकास इसी निरंतर परिवर्तन का नाम है—जहाँ सनातन को नए रूप में देखा जाए तो वह नूतन प्रतीत होता है, और नूतन को पुराने अर्थ में समझा जाए तो वह भी प्राचीन हो उठता है। इससे सभ्यता और जीवन के परिवर्तनशील स्वरूप का संकेत मिलता है कि मूल तत्व, अर्थात् ब्रह्म, सदा एक है—पर उसकी अभिव्यक्तियाँ समय के साथ रूप बदलती रहती हैं।

ब्रह्म को तीनों लिंगों का आधार बताया गया है। अथर्ववेद कहता है कि वही ब्रह्म स्त्री भी है, पुरुष भी और कुमार-कुमारी भी। वास्तव में, ब्रह्म किसी लिंग का नहीं, वह अलिंग है, शुद्ध चेतना या ऊर्जा है। उसका कोई निश्चित रूप, रंग या लिंग नहीं; पर वह जिस रूप में जुड़ता है, उसी रूप में दिखाई देता है। इसलिए उसे ईश्वर, शक्ति, देवी, देवता—सब नामों से जाना जाता है। यह वेदों का अत्यंत गहन संकेत है कि ब्रह्म भेद से परे है और सब भेद उसी में एक हो जाते हैं।

अथर्ववेद में पूर्ण ब्रह्म का सिद्धांत भी प्रस्तुत है। उसमें कहा गया है कि पूर्ण से ही पूर्ण की उत्पत्ति होती है, और वही पूर्ण सत्ता इस पूर्ण जगत का पालन करती है। इसी विचार से 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्' मंत्र की रचना हुई। सृष्टि पूर्ण है क्योंकि वह पूर्ण ब्रह्म से निकली है। ब्रह्म स्वयं अखण्ड, अविभाज्य और अनन्त पूर्णता है, जिसे जानना ही जीवन का वास्तविक उद्देश्य माना गया है।

अथर्ववेद ब्रह्म के साथ माया का संबंध भी प्रकट करता है। वेदान्त कहता है कि ब्रह्म अपने प्रकाशस्वरूप में अदृश्य नहीं, किन्तु माया—जो उसकी शक्ति है—जगत की विविधता और अनुभवों को रचते हुए उसे ढँक देती है। माया के आवरण से जीव ब्रह्म की सच्ची एकता को नहीं पहचान पाता और अनेक रूपों और भेदों को सत्य मानने लगता है। परंतु वास्तविकता में सब कुछ उसी एक ब्रह्म की लीला, उसकी शक्ति और उसकी ही अभिव्यक्ति है।

वेदों में ब्रह्म को 'सूत्रात्मा' कहा गया है—अर्थात् वह शक्ति जो समस्त जीव-जगत् को एक ही सूत्र में पिरोकर रखती है। जैसे धागा अनेक मनकों को जोड़कर एक माला बना देता है, उसी प्रकार ब्रह्म सभी प्राणियों को आंतरिक रूप से जोड़ने वाला, उन्हें एकता में बाँधने वाला अदृश्य तन्तु है। अथर्ववेद कहता है कि जो इस 'सूत्र के सूत्र'—अथवा इस सबको बाँधने वाले तत्त्व को जान लेता है, वास्तव में वह महान् ब्रह्म को जान लेता है। इसी अनुभव से विश्व-बंधुत्व, विश्व-प्रेम और समस्त प्राणियों में एकात्मता की भावना उत्पन्न होती है। ब्रह्म का यह सूत्रात्मा-स्वरूप बताता है कि सम्पूर्ण जगत् उसी में ओत-प्रोत है।

वेदों में ब्रह्म को हंस-स्वरूप भी कहा गया है। हंस का पहला गुण 'नीर-क्षीर विवेक' है—जल में मिले दूध को अलग पहचानकर ग्रहण कर लेने की क्षमता। यह विवेक-शक्ति ब्रह्म के गुणों में से एक मानी गई है। वह सत्य और असत्य, हेय और उपादेय, न्याय और अन्याय, कर्तव्य और अकर्त्तव्य के बीच सूक्ष्म भेद बताकर मनुष्य को सही दिशा में प्रेरित करता है। हंस का दूसरा गुण है—जल में

रहते हुए भी जल से निर्लेप रहना। इसी प्रकार ब्रह्म जगत के प्रत्येक कण में व्याप्त होते हुए भी किसी से आसक्त नहीं, किसी से बंधा नहीं। वह सर्वव्यापक भी है और सर्वथा स्वतंत्र भी; जगत को धारण करते हुए भी उससे अप्रभावित रहता है।

वेदों में ब्रह्म रूपी हंस को 'त्रिवृत' भी कहा गया है, जिसका अर्थ है—तीन तत्वों का समन्वित रूप। ब्रह्म में परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति—इन तीनों का तात्त्विक समन्वय है। जीवात्मा ब्रह्म का अंश है, अत: जीव और ब्रह्म में निकट संबंध है। प्रकृति ब्रह्म का कार्य-क्षेत्र है और ब्रह्म उसका कारण है; इस प्रकार कारण-कार्य संबंध से प्रकृति भी ब्रह्म से संबद्ध है। यही त्रिवृत्करण है—जहाँ ब्रह्म, जीव और प्रकृति एक-दूसरे से जुड़े हुए एक समग्र तत्त्व के रूप में दिखाई देते हैं।

ऋग्वेद और यजुर्वेद दोनों में हंसस्वरूप ब्रह्म के विषय में यह भी कहा गया है कि वह 'शुचिषद्' है—अर्थात् पवित्र स्थलों में, पवित्र हृदयों में ही निवास करता है। इसका आशय यह है कि ब्रह्म की उपस्थिति सर्वत्र होते हुए भी उसकी अनुभूति शुद्ध अन्त:करण, निष्काम भाव और निर्मल विवेक में ही संभव है।

वेदों में ब्रह्म की उपस्थिति को मानव-हृदय से लेकर सम्पूर्ण विश्व-चक्र तक एक ही सतत सत्ता के रूप में वर्णित किया गया है। उसे 'अतिथि' कहा गया है क्योंकि वह मानव-शरीर में ऐसे प्रवेश करता है मानो किसी पवित्र अतिथि का आगमन हुआ हो—अर्थात् शरीर नश्वर है पर उसमें निवास करने वाला ब्रह्म शाश्वत है। वह 'नृषद्' है, क्योंकि वह प्रत्येक मनुष्य के हृदय में बैठा हुआ आन्तरिक साक्षी रूप से कार्य करता है। 'वरसद्' कहने का तात्पर्य यह है कि उसका प्रकाश केवल उन्हीं हृदयों में पूर्ण रूप से प्रकट होता है, जो पवित्रता, श्रेष्ठता और आत्म-शुद्धि से सम्पन्न होते हैं। 'ऋतसद्' और 'ऋतजा:' होने का अर्थ है कि सत्य के प्रति निष्ठा और सत्य के आचरण से ही ब्रह्म की प्रतिष्ठा हृदय में होती है; सत्य का अनुसरण ही मनुष्य को ब्रह्मनिष्ठ और तत्त्वज्ञान से सम्पन्न बना देता है। वह 'ऋतम्' है क्योंकि स्वयं सत्यस्वरूप है और 'बृहत' है क्योंकि वही संसार की सर्वोत्कृष्ट, सर्वव्यापक, महान शक्ति है।

अथर्ववेद में ब्रह्म को ब्रह्मचक्र या ब्रह्माण्डरूपी चक्र का केन्द्र बताया गया है। यह पूरा जगत एक चक्र की तरह है, जिसका मूल-बिन्दु, नाभि या केन्द्र स्वयं ब्रह्म है। इस चक्र से हजारों अरे निकलते हैं, जिनका अर्थ है कि ब्रह्म की असीम शक्तियाँ इस विश्व-चक्र को चलाती हैं। यह चक्र किसी एक दिशा में नहीं, बल्कि सर्वत्र गतिशील है, क्योंकि अस्तित्व का प्रत्येक क्षण ब्रह्म की शक्ति से संचालित है। ब्रह्म की आधी शक्ति इस चक्र के रूप में प्रकट है—यही प्रकृति और जगत है—और आधी शक्ति अव्यक्त, अज्ञात और माप से परे है।

अथर्ववेद ब्रह्म के अव्यक्त स्वरूप को समझाते हुए कहता है कि ब्रह्म न केवल पृथ्वी और द्युलोक से परे है, बल्कि दोनों के भीतर भी व्याप्त है। वह असंग है इसलिए किसी स्थान से बँधा हुआ नहीं, और सर्वव्यापक है इसलिए किसी स्थान से अलग भी नहीं। पेड़ों, पौधों और सभी जीवों में जो जीवन-शक्ति प्रवाहित है, वह भी इसी ब्रह्म की सत्ता का प्रसार है।

यजुर्वेद ब्रह्म के विरोधाभासी प्रतीत होने वाले गुणों को समन्वित करता है। वह गति भी है

और अगति भी—क्योंकि सारी गति उसी से उत्पन्न होती है पर वह स्वयं कहीं गमन नहीं करता। वह दूर भी है क्योंकि अनन्त है, और समीप भी है क्योंकि हृदय के भीतर विद्यमान है। वह बाहर भी है और भीतर भी; यही सर्वव्यापकता का वास्तविक अर्थ है। अथर्ववेद इसी बात को और स्पष्ट करते हुए कहता है कि ब्रह्म की स्थिरता दिखाई देती है पर उसका गति-स्वरूप अनुभव में नहीं आता—वह समीप होते हुए भी अज्ञान के कारण दूर लगता है, और आत्मज्ञान प्राप्त होने पर दूरस्थ होते हुए भी अत्यन्त समीप अनुभव होता है।

निष्कर्षत: वेदों के अनुसार ब्रह्म वह एक, अदृश्य, अव्यक्त और सर्वव्यापी सत्ता है जो प्रत्येक जीव के भीतर आत्मा रूप से स्थित है और पूरे ब्रह्माण्ड को सूत्र की भाँति एकता में बाँधे हुए है। वह शरीर में अतिथि की तरह आता है, मनुष्य के हृदय में नृषद् रूप से बैठा है, और पवित्र हृदयों में वरसद् रूप से प्रकाशित होता है। सत्य और ऋत का पालन करने से ही वह हृदय में प्रतिष्ठित होता है क्योंकि वह स्वयं सत्यस्वरूप और बृहत् शक्ति है। जगत को ब्रह्मचक्र कहा गया है जिसका केन्द्र ब्रह्म है और जिसकी असंख्य शक्तियों से यह संसार संचालित होता है। वह प्रकृति के रूप में व्यक्त और अपनी अर्धशक्ति में अव्यक्त है। वह दूर भी है और समीप भी, गतिशील भी है और अचल भी—क्योंकि वह सबमें व्याप्त होते हुए भी किसी से बँधा नहीं। आत्मज्ञान से ही उसकी सर्वव्यापकता का अनुभव होता है और जीव को ब्रह्म से एकत्व का बोध प्राप्त होता है।

ꕥꕥꕥ

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, वैदिक दर्शन, विश्वभारती अनुसंधान परिषद, ज्ञानपुर, भदोही, तृतीय संस्करण, 2023*

1. *ब्रह्म जज्ञानं प्रथमम् .... सतश्च योनिम् असतश्च वि व:। (यजुर्वेद 13.3) यजुर्वेद उव्वट महीवर भाष्य संहिता, मोतीलाल बनारसीदास, काशी, 1972*

2. *तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम्। अथर्ववेद 5.2.1*

3. *अव्यनच्च व्यनच्च सस्रि.। अथर्ववेद 5.2.2*

4. *ब्रह्म सूर्यसमं ज्योति:। यजुर्वेद 23.48*

5. *यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति। (अथर्ववेद) सायणभाषयोपेत, एस.सी. पण्डित, बम्बई 1967 अध्याय 13.3.17*

6. *स एष एक एकवृद् एक एव। एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति। अध्याय 13.4. 12-13*

7. *न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते। अध्याय 13.5. 16-18*

8. *यो न: पिता जनिता यो विधाता, यो देवानां नामधा एक एव। ऋग्वेद- 10.82. 2 और 3, ऋग्वेद आर.टी. ग्रिफिथ को अनुवाद, बनारस, 1996*

9. स वरुण: स रुद्र: स महादेव: । अध्याय 8.4.6 से 5 । 8.6.25 से 28
10. सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णव: । अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयो: । अथर्ववेद अध्याय 10.8.23
11. त्वं स्त्री त्वं पुमानसि, त्वं कुमार उत वा कुमारी। अध्याय 10.8.27
12. पूर्णात् पूर्णमुदचति, पूर्ण पूर्णेन सिच्यते। अथर्ववेद अध्याय 10.8.29
13. यत्र देवा मनुष्याश्च...यत्र तन्मायया हितम्। अथर्ववेद अध्याय 10.8.34
14. सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत्। अ. 10.8.37-38
15. त्रिवृतं च हंसम्। अ. 10.8.17
16. हंस: शुचिषद्, अतिथि:, नृषद्, वरसद्, ऋतसद्, ऋतजा:, ऋतम्, बृहत्। ऋग्वेद अध्याय 04.40.5। यजुर्वेद 10.28
17. एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्त्राक्षरं.... । अर्धेन विश्व भुवनं जजान। अथर्ववेद अध्याय 10.8.7
18. न तत् पृथिव्यां नो दिवि, येन प्राणन्ति वीरुध: । अथर्ववेद अध्याय 1.32.1
19. तदेजति तत्रैजति तद्दूरे तद्वन्तिके. । यजु 40.5
20. अयातमस्य ददृशे न यातं, परं नेदीयोभवरं दवीय: । अथर्ववेद अध्याय 10.8.8